दैनिक जागरण
उत्तरदायित्व के बोध के बिना स्वतंत्रता निरर्थक है

भावी भारत का खाका

प्रधानमंत्री ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से अपने संबोधन में जो कुछ कहा उसमें बहुत कुछ उल्लेखनीय है, लेकिन जो सर्वाधिक उल्लेखनीय है वह यह कि उन्होंने बढ़ती आबादी की चुनौतियों को रेखांकित करते हुए केंद्र और राज्य सरकारों से अपील की कि वे जनसंख्या नियंत्रण के उपायों के बारे में भी सोचें। प्रधानमंत्री ने जिस तरह सीधे-सपाट शब्दों में कहा कि छोटा परिवार रखना भी अपनी देशभक्ति प्रकट करने का तरीका है और हर किसी को यह सोचना चाहिए कि जो शिशु धरती पर आने वाला है उसकी आवश्यकताएं कैसे पूरी की जाएंगी, उस पर सभी को ध्यान देने की आवश्यकता है। यह ऐसा विषय है जो किसी नियम-कानून से अधिक जनजागरूकता से ही हल होगा। देशहित से जुड़े ऐसे विषयों पर संकीर्ण राजनीति की कहीं कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। यह उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री ने देश के उद्योग जगत को यह भरोसा दिलाया कि उसे किसी तरह की आशंका रखने की जरूरत नहीं है, क्योंकि सरकार देश के विकास में योगदान देने और रोजगार के अवसर पैदा करने वाले उद्यमियों को मान-सम्मान देने के लिए प्रतिबद्ध है। यह भरोसा इसलिए जरूरी था, क्योंकि उद्योग जगत ही देश की संपदा बढ़ाने में सबसे बड़ी भूमिका निभाता है, लेकिन अनेक राजनीतिक दल ऐसे हैं जो सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के लिए उद्यमियों-उद्योगपतियों के प्रति लोगों को बरगलाने का काम करते हैं।

लाल किले से प्रधानमंत्री का संबोधन कुल मिलाकर अगले पांच साल के लिए देश के भावी पथ की तस्वीर बयान करता है। अपने संदेश में उन्होंने विकास के प्रति प्रचलित धारणाओं को बदलने पर तो जोर दिया ही, यह भी साफ किया कि सुधार के लिए साहसिक कदमों का सिलसिला और तेज होगा। एक ऐसा ही सुधार पूरे देश में एक साथ चुनाव के रूप में हो सकता है, जिसके प्रति प्रधानमंत्री ने एक बार फिर अपना संकल्प व्यक्त किया है। यदि लोकसभा और राज्यों में विधानसभा चुनाव एक साथ कराने का मार्ग प्रशस्त होता है तो यह एक क्रांतिकारी बदलाव ही होगा। देश इस बदलाव का इंतजार कर रहा है, क्योंकि यह उचित नहीं कि विकास और सुशासन आए दिन आदर्श आचार संहिता की बंदिशों में कैद रहें। बेहतर हो कि राजनीतिक दल एक साथ चुनाव पर आम सहमति कायम करें। ये सहमति तभी कायम होगी जब वे चुनाव सुधारों पर अपने किंतु-परंतु का त्याग करेंगे। मोदी सरकार ने अपने दूसरे कार्यकाल के शुरुआती 75 दिनों में जैसे ऐतिहासिक फैसले लिए हैं उससे यह भरोसा मजबूत होता है कि लाल किले से प्रधानमंत्री ने जो भी घोषणाएं की हैं और भावी भारत का खाका खींचा वैसा वास्तव में हो सकेगा।

पुलिस पर हमला

मॉब लिंचिंग को लेकर बड़े-बड़े बुद्धिजीवियों ने असहिष्णुता की बातें करते हुए पीएम नरेंद्र मोदी को पत्र लिखा था। विरोधी दलों ने कई सवाल उठाए थे, परंतु मॉब लिंचिंग से बचाने की जिम्मेवारी जिस पुलिस पर है यदि उसका ही लिंचिंग, वह भी थाने में, होने लगे तो स्थिति कहां तक पहुंच चुकी है इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। वह भी किसी दूर दराज के ग्रामीण इलाके में नहीं, बल्कि कोलकाता जैसे महानगर में थाने में घुसकर पुलिस कर्मियों की जमकर पिटाई की गई। वह भी किस लिए, एक नशेड़ी बाइक चालक को गिरफ्तार किए जाने के विरोध में। यही नहीं पिटाई के बाद भी पुलिस अफसरों को मुकदमा दर्ज करने एवं कार्रवाई में कई घंटे लग गए। पुलिस पर हमले के करीब तीस घंटे बाद 4 आरोपितों को गिरफ्तार किया गया। उधर थाने में हुए हमले और एफआइआर में देरी होने पर टालीगंज थाना प्रभारी अनूप घोष को हटा दिया गया। बता दें पिछले रविवार रात नशे में धुत होकर बाइक चलाने के आरोप में चेतला निवासी रंजन हलदर को पकड़कर पुलिस थाने ले गई। इसकी भनक लगते ही महिलाओं समेत 40-50 लोगों की भीड़ ने थाने पर हमला बोल दिया और पुलिस कर्मियों को जमकर पीटा, जिसमें पांच पुलिस कर्मी घायल हो गए। इसके बाद आरोपित के परिजनों ने पुलिस के खिलाफ ही रिपोर्ट दर्ज करा दी, लेकिन पुलिस को घटना में स्वतः संज्ञान लेते हुए रिपोर्ट दर्ज करने में 11 घंटे लग गए। मामले के तुल पकड़ने पर कोलकाता पुलिस आयुक्त ने थाना प्रभारी अनूप घोष की भूमिका पर नाराजगी जताई थी। साथ ही आरोपितों को शीघ्र गिरफ्तार करने के आदेश दिए। अभी यह मामला शांत भी नहीं हुआ था कि मालदा जिले के रतुआ में भीड़ ने पुलिस चौकी पर हमला बोल दिया और तोड़फोड़ करने के बाद आग लगाने की कोशिश की। बाद में अन्य थानों से पुलिसकर्मी पहुंच कर स्थिति को नियंत्रित किए, परंतु यहां बड़ा सवाल यह उठ रहा है कि आखिर इतना साहस बिना राजनीतिक प्रश्रय के हमलावरों में कहां से आ जाएगा? टालीगंज में हुई घटना में तो तृणमूल के ही दो मंत्रियों के बयान से विरोधाभास पैदा हो गया है, परंतु जब मुख्यमंत्री ममता बनर्जी यह कहती हैं कि पुलिसकर्मी से लेकर अधिकारी बिना रंग देखे कार्रवाई करें तो फिर इस तरह की घटनाएं क्यों हो रही हैं? इस पर मुख्यमंत्री को तत्काल संज्ञान लेते हुए जो भी दोषी हो उसके खिलाफ सख्त कार्रवाई करानी चाहिए। ताकि कोई पुलिस पर हमला न कर सके।

जुड़ाव की राजनीति के आगे बेबस विपक्ष

बद्री नारायण

अपने विरोधी विचार से जुड़कर उसे पूरी तरह आत्मसात करने वाली संघ-भाजपा की रणनीति से विपक्ष की बची-खुची सियासी जमीन भी खिसकती दिख रही है

हिंदुत्व परिवार की राजनीति दिन प्रतिदिन विस्तृत हो रही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस विस्तार की भूमिका रच रहा है और भारतीय जनता पार्टी यानी भाजपा इसे अंजाम देती जा रही है। भाजपा की राजनीति के इस विस्तार का मूलमंत्र है समावेशन यानी जुड़ाव की रणनीति। यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वह रणनीति है जिसे उसने अपनी संरचना में आज के संदर्भ में एक लय के रूप में विकसित कर लिया है। यह नीति हालांकि संघ की खोज है, परंतु इसके विकास में निरंतर बदलती भाजपा का प्रभाव भी शामिल है। मैं यहां कहना यह चाह रहा हूं कि संघ एवं भाजपा दोनों अपनी रणनीति के विकास में एक-दूसरे को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते दिखते हैं। समावेशन से यहां आशय अपने विरोधी विचारों, प्रतीकों एवं जनाधार को स्वयं में समाहित करने से है। अर्थात अपने विरोधी एवं प्रतिरोधी विचार को अपने दिलोदिमाग में जगह देना, उसके साथ जुड़ जाना एवं अपने से उसे जोड़ लेना ही समावेशन है। भाजपा की यह नीति इतनी कारगर है कि इसने विपक्ष की राजनीतिक जमीन को ही सिकोड़ना शुरू कर दिया है।

दरअसल जनतंत्र की राजनीति में दो तरीकों से जनता की लामबंदी राजनीतिक दल करते रहे हैं। एक तरीका प्रतिरोध का है और दूसरा समावेशन का। विपक्ष प्रायः प्रतिरोध के माध्यम से सत्ता एवं प्रभावी राजनीतिक शक्ति को कमजोर बनाता है। वहीं प्रभावी एवं मुख्यधारा के केंद्र में अवस्थित राजनीतिक शक्ति समावेशन के औजार से स्वयं को मजबूत करती जाती है। इसके लिए अपने विचारों में लचीलेपन का गुण और विरोधियों के विचारों एवं जनाधार को आत्मसात कर लेने की अपार शक्ति का होना जरूरी है। मुख्यधारा की राजनीति प्रायः अपने प्रतिरोधियों को तो पचाती जाती है, अनेक सह उप-राजनीतिक धाराओं को भी स्वयं में समाहित करती जाती है। अपने प्रतिरोधी के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सतत संवाद बनाए रखना समावेशन की प्रक्रिया का पहला चरण है।

अभी हाल ही में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भाजपा को अपने दूसरे कार्यकाल को दलितों, महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों पर केंद्रित करने का सुझाव दिया है। इस सुझाव का तात्पर्य यह है कि सरकार अपनी नीतियों, कार्य योजनाओं एवं परियोजनाओं के माध्यम से दलितों, महिलाओं एवं अल्पसंख्यक सामाजिक समूहों के मध्य प्रवेश करे। हम यह जानते हैं कि दलित, अल्पसंख्यक एवं नारी आंदोलन भारतीय राजनीतिक जनतंत्र में विपक्ष की राजनीति का आधार रहे हैं। समाजवादी राजनीति, बहुजन राजनीति, वामपंथी राजनीति एवं कांग्रेस की राजनीति इन सामाजिक समूहों के प्रतिरोधी आंदोलनों से ही अपना आधार विकसित करती रही है।

अब संघ एवं भाजपा इन सामाजिक समूहों को स्वयं में समाहित कर या जोड़कर विपक्षी राजनीति को ध्वस्त करने की दिशा में अग्रसर हैं। इन सामाजिक समूहों को जोड़ने की संघ प्रेरित कार्यनीति का मूलाधार उनमें प्रतिरोधी चेतना जगाकर उन्हें जोड़ने की विपक्षी रणनीति के समानांतर उनमें आकांक्षा जगाकर उन्हें जोड़ने की रणनीति पर आधारित है। इस आकांक्षा का मूल है-महाजनोयेन पन्थाः सुगता। अर्थात जिस रास्ते पर प्रभावी लोग चल रहे हैं, उसी रास्ते पर चलकर प्रभावी होने की आकांक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए। मुख्यधारा का प्रतिरोध नहीं, बल्कि मुख्यधारा से जुड़ते जाना, इस कार्यनीति का मूल है। सरकारी योजनाओं को पाने की चाह एवं उनकी तह तक पहुंचने की आकांक्षा अति उपेक्षित रहे दलितों के एक तबके को सत्ता में प्रभावी राजनीति एवं विचार से जोड़ती जा रही है। अगर गहराई से देखें तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ समावेशन की सामाजिक संस्कृति रच रहा है एवं भाजपा जनतांत्रिक माध्यम से उपेक्षित एवं अति उपेक्षित समूहों में समाहित होने की आकांक्षा उत्पन्न कर रही है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कई अनुषंगी संस्थाएं जनजातीय समूहों, दलित एवं उपेक्षित सामाजिक समूहों, नारी शक्ति और अल्पसंख्यकों के बीच कार्यरत है। वनवासी कल्याण के क्षेत्र में संघ की प्रभावी गैर सरकारी सेवाभावी संस्थाएं वन क्षेत्रों में सक्रिय हैं। दलित सामाजिक समूहों के बीच संघ द्वारा प्रस्तावित सामाजिक समरसता अभियान चल ही रहे हैं। मुस्लिम सामाजिक एवं धार्मिक समूहों के बीच भी राज्य मुस्लिम संगठन की तर्ज पर अनेक संस्थाएं संचालित हो रही हैं।

संघ ने जिस प्रकार से इन सामाजिक समूहों से जुड़े वैचारिक आदर्श के प्रतीकों को अपने में आत्मसात किया है, वह भी समझना जरूरी है। डॉ. भीमराव आंबेडकर एवं राममनोहर लोहिया, जो उपेक्षित एवं पिछड़ों की राजनीति के वैचारिक स्रोत रहे हैं, उन्हें संघ एवं भाजपा ने अपने साथ जोड़ा है। संघ के तमाम कार्यक्रमों में डॉ. आंबेडकर एक केंद्रीय प्रतीक होकर उभरने लगे हैं। नरेंद्र मोदी राममनोहर लोहिया की बार-बार सराहना करते हैं। संघ के कार्यालय में कई जगह डॉ. आंबेडकर की तस्वीरें लगी मिल जाएंगी। बिरसा मुंडा, ऊदा देवी, सुहेलदेव जैसे दलित एवं जनजातीय प्रतीक पुरुषों को संघ एवं भाजपा ने अपने साथ आत्मसात करने की कोशिश की है। इन प्रतीक पुरुषों के लिए स्मृति स्थल विकसित करना, इनकी स्मृति में पार्क एवं चौराहों का नामकरण करना, इनके नाम पर ट्रेन चलाना, इनकी जयंती आयोजित करना संघ एवं भाजपा की इसी कार्य नीति का हिस्सा हैं। भाजपा ने इन सामाजिक समूहों से राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं मंत्री बनाकर, उनके नेताओं को राजनीति में समाहित कर उनकी आकांक्षाओं की गति को अपने पक्ष में करने की सफल कोशिश की है।

भाजपा दिन-प्रतिदिन नए-नए क्षेत्रों में, तमाम वंचित सामाजिक समूहों के बीच अपनी राजनीति का प्रसार कर रही है। छोटी-छोटी जातीय एवं सामाजिक अस्मिताओं को अपने में समाहित कर उन्हें बड़ी-सी महसूस होने वाली अस्मिताओं जैसे-राष्ट्र, धर्म, सत्ता के भागीदार समूहों में जोड़ती जा रही है। अस्मिताओं की छोटी एवं ज्यादा करीब की इकाइयां जैसे जाति एवं उप-राष्ट्रीयता हममें सनसनी तो पैदा करती हैं, पर बड़ी अस्मिताएं बड़े सम्मान का बोध जगाती हैं। विपक्ष की राजनीति के सामने अब बड़ा संकट है कि कैसे इन लघु अस्मितापरक इकाइयों को बड़ी अस्मिता की इकाई में बदले और संघ एवं भाजपा द्वारा रची जा रही नई आकांक्षापरक अस्मिताओं के समावेशन से निर्मित एक वृहत सामाजिक गठजोड़ का मुकाबला करे। आगे भारतीय जनतंत्र की राजनीति और भी रोचक होने जा रही है। देखना है कि विपक्ष आने वाले समय में इसके खिलाफ कैसे राजनीतिक अस्त्र विकसित करता है? जाति एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों में पीड़ित होने के भाव को कैसे जागृत करता है? साथ ही भारतीय जनतंत्र में जाति की राजनीति को कैसे पुनः परिभाषित करता है?

(लेखक प्रयागराज स्थित गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान के निदेशक हैं)

response@jagran.com

एनआरसी पर अनुचित आपत्ति

बैजयंत 'जय' पांडा

कुछ छिटपुट गलतियों के कारण एनआरसी जैसी बड़ी कवायद की पूरी प्रक्रिया पर सवाल उठाकर उसे खारिज करना सही नहीं

सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट कर दिया है कि असम में नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजंस यानी एनआरसी को प्रकाशित करने की मियाद और नहीं बढ़ाई जाएगी। एनआरसी को दोबारा कराने की अर्जी भी खारिज कर दी है। इस पर सुप्रीम कोर्ट ने अपने 26 जुलाई के फैसले पर मुहर लगाते हुए 12 अगस्त को आदेश दिया कि 31 अगस्त तक दी गई समयसीमा में ही एनआरसी की अंतिम सूची जारी करनी होगी। अब इसमें पखवाड़े भर का समय शेष है। शीर्ष अदालत की अगुआई में हो रही इस कवायद से राजनीतिक हलचल भी तेज हो गई है। पक्ष-विपक्ष भी इसमें एक दूसरे पर हमलावर हुए जा रहे हैं। कोर्ट का 26 जुलाई का निर्णय वास्तव में जनवरी 2018 में प्रकाशित प्रारूप सूची के बाद आया है जिसमें असम एनआरसी के 3.29 करोड़ आवेदकों में से लगभग 40 लाख नाम हटा दिए गए थे। यह मुद्दा न केवल नागरिकता और राष्ट्रवाद की अवधारणा से जुड़ा है, बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप में लाखों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाला भी है। इसलिए इस मामले का व्यापक मूल्यांकन आवश्यक है।

नागरिकता की बहस अठारहवीं शताब्दी में उठी जब पाश्चात्य समाज पुनर्जागरण आंदोलन से प्रभावित था। उसी दौर में उदारवाद भी जन्म ले रहा था। नागरिकता और राष्ट्रवाद की बहस तब और तीव्र हुई जब यूरोपीय देश संविधान को चर्च से ज्यादा महत्व देने लगे। हालांकि उदारवादियों ने इन दिनों उदारवाद के मूल सिद्धांतों को भुलाकर वामपंथ की कई अवधारणाओं को अपना लिया है। इनमें एक विचित्र अवधारणा ओपन बॉर्डर यानी 'खुली सीमा' की भी है जिसे अपनाकर उदारवादी नागरिकता की संकल्पना को ही समाप्त कर देना चाहते हैं। नागरिकता को लेकर इन हालिया बहसों का वैश्विक संदर्भ भी है जहां यह तमाम देशों के राजनीतिक दलों के बीच बहस का प्रमुख मुद्दा बन जाती है। यह बहस अमेरिका में डेमोक्रेटिक पार्टी और राष्ट्रपति ट्रंप की रिपब्लिकन पार्टी के बीच प्रमुख मुद्दों में से एक है। इस साल जून में पहली डेमोक्रेटिक प्रेसिडेंशियल बहस में तो एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई। उसमें सभी उम्मीदवारों ने अवैध प्रवासियों के लिए मुफ्त सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का समर्थन किया। इस पर राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि डेमोक्रेटिक पार्टी को राष्ट्रपति चुनाव में इस घोषणा का खामियाजा भुगतना पड़ सकता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि दुनिया के दूसरे सबसे बड़े लोकतंत्र के नागरिक भी अवैध प्रवासियों को मिल रहे ऐसे महत्व को लेकर संशय में हैं।

उदारवाद की मूल विचारधारा में राष्ट्रवाद को प्रमुखता दी गई थी, लेकिन यह अमेरिकी उदाहरण दर्शाता है कि यह विचारधारा अपने मूल विचार से कितना भटक चुकी है। जब उदारवादी असम में एनआरसी की अवहेलना करते हैं तो वे व्यावहारिक रूप से 'खुली सीमा' की वकालत करते हैं। वे भूल जाते हैं कि पड़ोसी बांग्लादेश से अवैध रूप से आने वाले लोगों के चलते असम की स्थानीय आबादी का स्वरूप बिगड़ रहा है। राज्य के मूल निवासियों को इससे काफी परेशानी हो रही है।

मोदी सरकार के विरोध में तर्क दिया जाता है कि यह विद्वेष फैलाने वाली सरकार है जिसके लिए वे 2016 में बने प्राथमिकता कानून का उदाहरण देते हैं। इस कानून के तहत पड़ोसी देशों के गैर-मुस्लिम शरणार्थियों (हिंदुओं, ईसाइयों और पारसियों आदि) को प्राथमिकता दी जाती है। आलोचक भूल जाते हैं कि बांग्लादेश से प्रवासी मजदूर बेहतर वेतन और संसाधनों के लिए असम आते हैं, न कि अपने देश में हो रहे उत्पीड़न से बचने के लिए। अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के अनुसार प्रत्येक देश में शरणार्थियों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, न कि अवैध प्रवासियों को जो केवल बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश में अवैध रूप से किसी राज्य में घुस जाते हैं।

विपक्षी दल अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए एनआरसी प्रक्रिया का विरोध कर रहे हैं, लेकिन वे भूल रहे हैं कि इस कवायद की निगरानी सीधे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की जा रही है। वर्तमान प्रक्रिया की जड़ें भी असम समझौते में हैं, जो दिवंगत प्रधानमंत्री राजीव गांधी की विरासत है। इससे कांग्रेस के लिए एनआरसी प्रक्रिया का विरोध करना और भी मुश्किल हो जाता है। एनआरसी के आलोचक यह क्यों नहीं देख पा रहे हैं हैं कि तीन दशकों की अकर्मण्यता के बाद आखिर इस मामले में एक सही पहल हुई है। असम समझौते के बाद राज्य दशकों तक गतिरोध की स्थिति में फंसा हुआ था और उसमें बनी सहमति के आधार पर फैसलों को लागू करने के लिए गंभीर प्रयास नहीं हो रहे थे।

इसमें संदेह नहीं कि एनआरसी की गिनती में भी कुछ गलतियां हुई हैं। हालांकि इतनी व्यापक कवायद में कुछ खामियां स्वाभाविक ही हैं। वर्तनी की गलती के कारण एक महिला की गलत पहचान के एक मामले को स्वीकार कर उसे राहत दी जा चुकी है। एक पूर्व भारतीय सैनिक को हिरासत में लिया गया, लेकिन बाद में जमानत दे दी गई। हालांकि उनकी नागरिकता के मामले में अभी सुनवाई शेष है। इन छिटपुट मामलों को उछालकर आलोचक पूरी प्रक्रिया को ही संदिग्ध बताने के अभियान में जुटे हैं। वे इस बात को नजरअंदाज कर रहे हैं कि नागरिकता के महत्वपूर्ण सवाल को निर्धारित करने के लिए सक्रिय कदम उठाने वाला राज्य ही अपने नागरिकों की जरूरतों को बेहतर ढंग से लक्षित कर उनकी पूर्ति कर सकता है। निःसंदेह इन गलतियों की अनदेखी नहीं की जा सकती, क्योंकि एक भी नागरिक को गलत तरीके से अयोग्य घोषित करना एक गंभीर चिंता का विषय है। इससे बचने के लिए तंत्र को और प्रभावी बनाना होगा और सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में इसे संभव बनाया जा सकता है। हालांकि इसके लिए कदम पीछे नहीं खींचे जा सकते। सरकारी कार्यप्रणाली और दस्तावेजीकरण को सुधारने के लिए अन्य उपायों पर भी हमें भविष्य में बहस शुरू करनी होगी।

आखिर हमें इस पर ध्यान केंद्रित करना होगा कि क्या महत्वपूर्ण है और क्या नहीं? विपक्ष बुनियादी रूप से जिस काल्पनिक संकट का हौवा खड़ा कर रहा है उसमें तथ्यों, आंकड़ों और ऐतिहासिक दस्तावेजों को नकारा जा रहा है। अब हमें एक नए भारत की कल्पना करनी होगी जहां प्रत्येक भारतीय नागरिक के अधिकार सुरक्षित होंगे और सरकारी कार्यप्रणाली भी सक्षम होगी।

(लेखक भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

संवेदना

संवेदना हृदय की गहराइयों से उठती हुई एक पुकार है। मानव संवेदनशील होकर ही एक सुसभ्य एवं सुव्यवस्थित समाज की परिकल्पना कर सकता है। संवेदना के अभाव में मनुष्य के जीवन जीने का कोई औचित्य नहीं है। जब इंसान सिर्फ अपने हित या स्वार्थ तक ही सीमित रहेगा और समाज के कमजोर, पीड़ित लोगों के प्रति संवेदना व्यक्त नहीं करेगा तो यह धरती निराशा के घर में तब्दील हो जाएगी। प्रत्येक मनुष्य को एक-दूसरे के साथ संवेदना रखनी चाहिए। संवेदना इंसान के अंतःकरण की गहन और मौन अभिव्यक्ति है। इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कोई जगह नहीं होती है। जिस व्यक्ति को दूसरों के दुखों को देखकर दुख महसूस नहीं होता या दुखी व्यक्ति के लिए उनके मन में संवेदना उत्पन्न नहीं होती तो यह मान लेना चाहिए कि वह संवेदनहीन मनुष्य है। मानव वही है, जिसमें मानवता है और मानवता वह है जिसमें संवेदना है।

संवेदना एक ऐसा गुण है, जिससे मनुष्य किसी का भी दिल जीतकर उसे अपना बना सकता है। संवेदना से पराए भी अपने हो जाते हैं और संवेदना न हो तो अपनों को पराया बनने में भी ज्यादा देर नहीं लगती। मनोविज्ञान कहता है कि संवेदना व्यक्त करने से दोनों पक्षों को लाभ होता है। संवेदना देने और लेने वाले दोनों एक-दूसरे को मन की शक्ति और भावनाओं की विशालता प्रदान करते हैं। जहां संवेदना लेने वाले को अपने दुखों से लड़ने के लिए मानसिक शक्ति और भावनात्मक बल मिलता है, वहीं संवेदना व्यक्त करने वाले को इसका दोहरा लाभ प्राप्त होता है। संवेदना व्यक्त करने से मनुष्य में उदारता, दया, भावुकता, ईमानदारी जैसे कई सकारात्मक गुण आ जाते हैं।

इन गुणों के विस्तार से न केवल मनुष्य का जीवन जीने का नजरिया बदल जाता है, बल्कि उसकी आयु भी बढ़ जाती है। वास्तव में संवेदना से मनुष्य का मन निर्मल और पवित्र होता है और बुद्धि-प्रखरता से उसका व्यक्तित्व निखर उठता है। यदि मनुष्य एक-दूसरे के प्रति संवेदना व्यक्त करे तो इस संसार में दुख मिट जाएगा।

शंभूनाथ पांडेय

सेहत से खिलवाड़

अमृत कुमार

देश में मिलावटी एवं नकली दूध का खूब बोलबाला है। इस मिलावट के चलते बीमारियां भी फैल रही हैं

दुनिया में दूध उत्पादन में अव्वल होने के साथ हम दूध की सबसे ज्यादा खपत में भी आगे हैं। देश के प्रत्येक नागरिक को औसतन 290 ग्राम दूध रोजाना मिलता है। इस हिसाब से देश में कुल खपत प्रतिदिन 45 करोड़ लीटर दूध की हो रही है, जबकि शुद्ध दूध का उत्पादन करीब 15 करोड़ लीटर ही है। जाहिर है दूध की कमी की पूर्ति नकली दूध बनाकर और पानी मिलाकर की जा रही है।

देश में दूध का 70 फीसद कारोबार असंगठित ढांचा संभाल रहा है। इस कारोबार में ज्यादातर लोग अशिक्षित हैं, लेकिन पारंपरिक ज्ञान से न केवल वे बड़ी मात्रा में दुग्ध उत्पादन में सफल हैं, बल्कि इसके सह-उत्पाद दही, घी, मक्खन, पनीर, मावा आदि बनाने के भी जानकार हैं। देश में दूध उत्पादन में 96 हजार सहकारी संस्थाएं जुड़ी हैं। 14 राज्यों की अपनी दूध सहकारी संस्थाएं हैं। इससे सात करोड़ से भी ज्यादा लोगों की आजीविका जुड़ी है। रोजाना दो लाख से भी अधिक गांवों से दूध एकत्रित करके डेयरियों में पहुंचाया जाता है। इतना व्यापक और महत्वपूर्ण व्यवसाय होने के बावजूद इसकी गुणवत्ता की निगरानी के लिए कोई नियामक तंत्र देश में नहीं है। इसलिए दूध की मिलावट में इंसानी लालच बढ़ी समस्या बना हुआ है।

इस पर नियंत्रण की दृष्टि से केंद्रीय मंत्री हर्षवर्धन ने दूध में मिलावट का पता लगाने के लिए भारत में ही निर्मित एक नए यंत्र की जानकारी दी है। उन्होंने दावा किया है कि मिलावट की मामूली मात्रा को भी यह यंत्र पकड़ने में सक्षम है। हालांकि केवल दूध के नमूने की जांच भर से शुद्ध दूध की गारंटी संभव नहीं है। वह इसलिए, क्योंकि मवेशियों को जो चारा खिलाया जाता है, उसमें भी दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए रासायनिक तत्व मिलाए जाते हैं। यही नहीं मवेशी दूध ज्यादा दें इसके लिए उन्हें जो इंजेक्शन लगाए जाते हैं उनसे दूध का उत्पादन तो बढ़ता है, लेकिन अशुद्धता भी बढ़ती है। दूध में प्रोटीन की मात्रा बढ़ाने के लिए जो डिब्बाबंद चारा बनाया जाता है, वह नाइट्रोजन को बढ़ाता है। जाहिर है दूध की शुद्धता के लिए इन उत्पादों पर भी प्रतिबंध लगाना जरूरी है, क्योंकि दूध के नमूने की जांच में वह दूध भी अशुद्ध पाया गया है, जिसमें ऊपर से कोई मिलावट नहीं की जाती है। यह अशुद्धता चारे में मिलाए गए रसायनों के द्वारा सामने आई है।

यह सही है कि यदि दूध में मिलावट हो रही है तो इसे अच्छी सेहत के लिए दूर करना सरकार का दायित्व है, लेकिन महज तकनीक से मिलावट की समस्या का निदान हो जाएगा, यह मात्र भ्रम है। यदि इंसानी लालच दूध में मिलावट का कारण है तो तकनीक से दूध की जांच भी वही सरकारी नौकरशाही करेगी, जो भ्रष्ट है। ऐसे में तकनीक चाहे जितनी सक्षम क्यों न हो, उसकी अपनी सीमाएं हैं। मनुष्य के लालच के आगे तकनीकी उपकरणों के पराजित होने के अनेक मामले सामने आ चुके हैं। इसलिए इस विकराल समस्या के निराकरण के लिए इसके सहायक पहलुओं के भी शुद्धिकरण की जरूरत है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

समय की मांग है गांधीवाद

'गांधीवाद की ओर लौटने की दरकार' शीर्षक से लिखे अपने लेख में जगमोहन सिंह राजपूत ने विविध सदर्भों में गांधीवाद के महत्व तथा उतरोत्तर गांधीवादी मूल्यों के ह्रास होते जाने पर विश्लेषण के साथ-साथ चिंता भी व्यक्त की है। वर्ष 2014 और फिर 2019 में राजनीतिक रूप से हुए बड़े परिवर्तन ने देश की आगामी योजनाओं की दिशा तय कर दी थी। अनेक योजनाएं प्रभावी ढंग से लागू हुईं, जिसका परिणाम बदलाव के रूप में सामने आया और एक नया तथा सशक्त भारत आज शिखर की ओर बढ़ रहा है। अनुच्छेद 370 का हटाया जाना उसी सफलता में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। किंतु स्वच्छ भारत, भ्रष्टाचार मुक्त भारत, गरीबी मुक्त भारत, आतंकवाद मुक्त भारत, ग्राम विकास, जल संरक्षण, सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न भारत तथा राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण भारत आदि अनेक महत्वपूर्ण मुद्दे ऐसे हैं जिन पर अभी बहुत कुछ करना बाकी है। गांधी जी ने एक समर्थ तथा सशक्त भारत का स्वप्न देखा था, जिसकी चर्चा वह अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'मेरे सपनों का भारत' में करते हैं, लेकिन विडंबना यह रही कि गांधीवाद पर और गांधी जी के नाम पर लंबे समय तक राजनीतिक रोटियां तो खूब सेंकी गईं, किंतु उनके सपनों का भारत पुस्तक में ही बंद रहा। गांधी जी के सत्य, अहिंसा, सदाचार तथा अपरिग्रह आदि मूल्य हाशिये पर ही पड़े रहे। निश्चित रूप से आज निहित स्वार्थों को छोड़कर गांधीवाद की ओर लौटने से ही अंतिम जन की आशा आकांक्षा पूरी हो सकेगी।

डॉ. वेदप्रकाश, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली

पाक ने सत्य स्वीकारा

सत्य थोड़े समय के लिए दब सकता है, लेकिन एक न दिन बाहर आ ही ज्यादा है। पाकिस्तान के द्वारा बालाकोट में एयर स्ट्राइक की बात सिरे से खारिज करना और फिर अपने स्वतंत्रता दिवस पर कबूल कर लेना कुछ इसी तरह के संकेत देते हैं। पुलवामा की आतंकी घटना के कुछ ही दिन बाद भारत ने जिस तरह से पाकिस्तान के बालाकोट में हवाई हमले करके पाकिस्तान के यहां पल रहे आतंकियों की कमर तोड़ने का काम किया था, यह अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि थी, लेकिन उस समय पाक के पीएम ने इस कार्रवाई को झूठा बताया था जिसमें हमारे देश के भी कुछ विपक्षी नेता और पश्चिमी मीडिया उनका साथ दे रहा था। इमरान ने 14 अगस्त को पाकिस्तान के स्वतंत्रता दिवस मनाने के दौरान इस बात को स्वीकार कर लिया कि भारत ने बालकोट में जबरदस्त हमला किया था। अब जब पाक के प्रधानमंत्री ने बालकोट के सच को स्वीकार कर लिया है तो अब उम्मीद बढ़ गई है कि भारत में सुबूत मांगने वाले लोगों को भी विश्वास हो जाना चाहिए।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

स्वामी दयानंद का योगदान

दैनिक जागरण के 15 अगस्त के अंक में गोपालकृष्ण गांधी का लेख, तिरंगा और आजादी का उत्सव, पढ़ा। इसमें लेखक ने आजादी में योगदान के लिए पांच गणमान्य व्यक्तियों का स्मरण किया। मगर 1857 के पश्चात आजादी के लिए अलख जगाने वाले क्रांतिकारी संत स्वामी दयानंद का नाम स्मरण नहीं किया। स्वामी जी का कथन था कि कोई कितना ही करे, परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सबसे उत्तम होता है। विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है। स्वामी जी के विचार चिंतन का परिणाम ही था कि देश को लाला लाजपत राय, भाई परमानंद, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह जैसे प्रसिद्ध क्रांतिकारी मिले। ये सब आर्य समाज से प्रभावित थे।

डॉ. विवेक आर्य, शिशु रोग विशेषज्ञ, दिल्ली

सामान्य श्रेणी के छात्र

केंद्रीय माध्यम शिक्षा बोर्ड (सीबीएसइ) ने एससी और एसटी छात्रों के लिए परीक्षा शुल्क को 24 गुना बढ़ा दिया है। एससी और एसटी श्रेणी के छात्रों को 1200 रु और सामान्य श्रेणी के छात्रों को 1500 रु परीक्षा शुल्क के रूप में देने होंगे। दिल्ली सरकार भी केवल विशेष वर्ग के छात्रों के लिए चिंतित नजर आई। दिल्ली सरकार ने एससी और एसटी श्रेणी के छात्रों का बढ़ाया गया परीक्षा शुल्क अपनी जेब से भरने का एलान किया, लेकिन सामान्य श्रेणी के छात्रों का शिक्षा अधिकार क्यों नजर नहीं आता? क्या दिल्ली सरकार के लिए सभी छात्र समान नहीं हैं?

निशांत रावत, डॉ. भीमराव आंबेडकर कॉलेज

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्